अंतरा-शब्दशक्ति

कस्तूरी

गजल संग्रह

विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'

कस्तूरी

(ग़ज़ल संग्रह)

विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-88102-98-8

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१
शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१
दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९
अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com
अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'
मूल्य - ५५.०० रुपये
आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी
मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Kasturi by Vijay Kumar Agrahari 'Aalok'

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

मन की बात

कस्तूरी की योजना सन् १९९८ में बड़ी जोर-शोर से बनी। ६१ ग़ज़लों के साथ कई एक प्रकाशकों से मिला। सभी ने प्रसंशा की पर पर आर्थिक सहयोग की आवश्यकता भी बताई। इस क्षेत्र में पहला कदम रख रहा था। जोश इतना ज्यादा था कि खुद ही प्रकाशित करने की सोची। पता नहीं था, प्रकाशन केवल मुद्रण नहीं होता। किताबें छपी और घर में पड़ी पड़ी दीमक खा गयी। कुछ पुरानी कुछ नयी ग़ज़लों के साथ २६ ग़ज़लों की नयी कस्तूरी इस बार सही मायने में प्रकाशित करवा रहा हूं। क्योंकि अब प्रौढ़ हो गया हूं और श्रीमती प्रीति सुराना जैसा जाना-माना नाम मुझे प्रोत्साहित कर रहा है तो पीछे रहना काहिलपना और मुर्खता ही होगी। अस्तु, यह निवेदन आगे कर रहा हूं। तब से अब में एक बड़ा अन्तर यह हुआ है कि २००८ में ब्रेन हैमरेज के बाद से लिखना मेरे लिए बांये हाथ का खेल रह गया है क्योंकि दाहिना हाथ अब काम नहीं करता।

आंचलिक उपन्यास कार दिवंगत श्री विवेकी राय जी मुझसे स्नेह करते थें। हालांकि उनके हाथ से लिखा वह पत्र, मेरे तमाम अन्य पाण्डुलिपियों के साथ लगभग १० वर्ष पूर्व गाज़ीपुर के बाढ़ में गंगा में विलीन हो गया पर उनका यह वक्तव्य पुस्तक में जगह पा सका जिससे मुझे जो आत्मिक संतोष एवं खुशी हुई है वो शब्दातीत है।

डॉ. विवेकी राय जी द्वारा १९९८ में लिखा पत्र

आशीर्वचन

कवि विजय अग्रहरि 'आलोक' के ताज़े ग़ज़लों के संग्रह 'कस्तूरी' के बीच से गुजरना एक सुख है, मनोमय सुख, आपाधापी भरे जीवन के विविध खरोंच भरे क्षणों में सहलाव का सुख। शब्दों की शक्ति पर विश्वास जमता है। पीड़ा की आँच में तपे शब्द झपट्टामार कर किसी भावलोक में फेंक देते हैं। भले ही 'आलोक' का कवि कहे 'टूट कर संवेदना बौनी हुई' अथवा 'भाव बोझिल हो रहे हैं, शब्द जाहिल हो रहे हैं।' मगर यही टूटी संवेदना, बोझिल भाव और जाहिल शब्द ग़ज़ल की बुनावट में ढलकर एक समवेत प्रभाव उत्पन्न करते हैं। पढ़ने सुनने वाले के लिए अनुरंजनपूर्ण भावोत्कर्ष गुदगुदाती हुई विचारोत्तेजना के माध्यम बन जाते हैं। मैं पठनीय और विचारणीय ग़ज़लों के इस संग्रह 'कस्तूरी' के लिए 'आलोक' जी को बधाई देता हूँ।

डा० विवेकी राय मार्ग
बड़ीबाग, गाज़ीपुर
6-4-1998

डा० विवेकी राय

अनुक्रमणिका

1.	परिचित सी इक गंध कस्तूरी	7
2.	टूट कर सम्वेदना बौनी हुई	8
3.	स्याह रात की कालिख को	9
4.	कल ख्वाब में उनसे मुलाकात हो गयी	10
5.	कतरन की तरह उम्र को सीता मिला मुझे	11
6.	चप्पे, चप्पे चुप्पी बिखरी	12
7.	है इधर भी आदमी	13
8.	गुज़ारने को शामे ज़िन्दगी	14
9.	जाने क्यूं लोग कटे रहते हैं	15
10.	दर्द पिघले तो मेरे ग़ज़ल हो गये	16
11.	इक शाम ऐसे भी गुजारी जाये	17
12.	निगाहों से पी लूँ	18
13.	होंठ तुम्हारे पतले से	19
14.	रात अंधेरों ने पुचकार कर कहा	20
15.	जीए जाते हैं रोज किसी बहाने से	21
16.	इस ज़िंदगी का क्या करूं?	22
17.	बहुत दिनों से कुछ कहा नहीं है	23

18. आज मौसम कुछ सर्द है 24
19. जिन्दगी रेहन पडी है लाचार सी 25
20. प्रेम कहाँ है मिला ही नहीं 26
21. यार, विजय! क्या करते हो 27
22. ये क्या कि जिन्दगी पार हुई जाती है 28
23. वो मेरे सब्र का इम्तहान लेती है 29
24. सपना ही था टूट गया 30
25. बहुत सी बातें कहाँ जाहिर होती हैं 31
26. नहीं, अब शिकायत नहीं करता 32

एक

परिचित सी इक गंध कस्तूरी।
भटकन का अंतर्द्वन्द्व कस्तूरी।

कस्तूरी पावस की पीडा,
नागफनी मकरंद कस्तूरी।

कस्तूरी अंगना की छमछम,
कोठों के पगबंध कस्तूरी।

कस्तूरी सिंहों का गर्जन,
मुस्काता मधुछंद कस्तूरी।

कस्तूरी खुशबू से प्रेरित,
अर्पण तुम पर चंद कस्तूरी।

दो

टूट कर सम्वेदना बौनी हुई।
और जीवन घाट का पत्थर हुआ।

ढूढ़ता है कुछ अधूरी फाइलें,
आदमी जिस दौर से दफ़्तर हुआ।

बढ़ गये हैं और पॉव जुर्म के,
और लम्बा भूख का चद्दर हुआ।

प्यास को जब कभी पानी मिला,
हाल बद से और भी बदतर हुआ।

जब दिलों में ही दीवारें खिंच गयीं,
घर तो अपना मात्र इक छप्पर हुआ।

तीन

स्याह रात की कालिख को अश्कों में डुबों दूँ मै।
एक ज़श्न है मौसम कहीं खुद को न खो दूँ मै।

इंतहां दर्द की अश्कों सी कहीं पत्तों से चू गयी,
गर बह जाये यह सैलाब भी नश्तर चुभो दूँ मै।

बेजान से वीराने में एक वही बेख़्वाब तन्हा है,
गांधी, ईसा या परीशां नाम क्या उसको दूँ मै?

जल जायें न मासूम बच्चें नफरतों की धूप में,
खजूर के खेतों में चल आज बरगद बो दूँ मै।

कपडों से उसके बदन के दाग यदि मिटते नहीं,
क्यूं न उनके ही लहू से कपडे उनके धो दूँ मै।

चार

कल ख्वाब में उनसे मुलाकात हो गयी।
चलो कैसे भी पूरी पर मुराद हो गयी।

उलझनों की दूकान समेटो भी यार,
कल करना व्यापार अब रात हो गयी।

सुना है कचहरी में न्याय बंटा है,
आज हमारे यहां नयी बात हो गयी।

रोज करते थें कीर्तन तो बरसा नहीं,
लुट के गूंगे हुए तो बरसात हो गयी।

बंदिशों की दीवार गिरी है कहीं,
हर तरफ इकट्ठी जमात हो गयी।

पांच

कतरन की तरह उम्र को सीता मिला मुझे।
फिर आज कोई आदमी जीता मिला मुझे।

आ न सके काम जब नेकी औ' तालीम,
भर-भर के ख्वाब वो पीता मिला मुझे।

ले-ले के अपनी बात मै जहां-जहां गया,
ऊंचा हरेक अफ्सर बहुत नीचा मिला मुझे।

तबादला, तन्हाई और बेबसी का शोक,
सच बोलने का बस यही नतीजा मिला मुझे।

जिसने लगा इल्जाम मुझे बरबाद कर दिया,
शोहरतों में जिक्र भी उसी का मिला मुझे।

छः

चप्पे, चप्पे चुप्पी बिखरी, घर से घर तक दहशत है।
जंगल आया मेरी बस्ती, हर दस्तक अब वहसत है।

फनकार सब फना हो रहे, जैसी जिसकी कूबत है,
जिंदा है अब भी यह शायर, यह तो उनकी रहमत है।

सच्ची- सच्ची बात कहूं तो, लगती मुझ पर तोहमत है,
बात बनेगी अब तो उसकी, जो उनसे ही सहमत है।

कैसी यह फैली बीमारी, सब से सब को नफरत है,
कॉटों मे पर फूल खिलाने, की अपनी तो हसरत है।

कहीं रात रंगीन हो रही, कहीं पे केवल करवट है,
क्यूं किससे अब करें शिकायत, अपनी-अपनी किस्मत है।

सात

है इधर भी आदमी, और उधर भी आदमी।
ढो रहा है ज़िंदगी, है जिधर भी आदमी।

वे मुफ़लिस थें जानवर, ये मजलिस में जानवर,
कहीं आते नहीं मुझे, अब नज़र भी आदमी।

यही सोच कर सुबह, सजाता हूँ गुलदस्तें,
आ जाए ही कभी, मेरे घर भी आदमी।

फिर भी दौडतें हैं सब, यूँ तो जानते है सब,
दौड़ता ही रह गया, सिकंदर भी आदमी।

रोज ढूढता है आदमी, बनकर भीड़ आदमी,
पा सका न पर कहीं, उम्र भर भी आदमी।

आठ

गुज़ारने को शामे ज़िन्दगी,
मिली थी सबको ज़ामे जिन्दगी,

किसी ने पी ली लहक लहक के,
किसी ने थोडी छुपा के रख ली।

बरबादियों पर हंसा किए हम,
शिकायत उसने खुदा से कर ली।

न था मुनासिब उनसे कहना ,
तो लो ये मैने ज़हां से कह ली।

असबाबे तन्हाई तेरा दिया था,
विरासत ये सारी तेरे नाम कर दी।

नौ

जाने क्यूं लोग कटे रहते हैं।
क्यूं इतने सहमे-डरे रहते हैं।

कोई खुल के मिलता ही नहीं,
अपना वजूद सब धरे रहते हैं।

वे डरते हैं अपनी तौहीनी से,
जब भी मिलते हैं तने रहते हैं।

उम्र दबे पाँव निकल भी गयी,
आदमी वही पर पड़े रहते हैं।

मुहब्बत नये मायने तलाश करे,
वे पत्थर नहीं कि गड़े रहते हैं।

दस

दर्द पिघले तो मेरे ग़ज़ल हो गये।
प्रीत प्यासी और नैना सजल हो गये।

तन्हा तड़पा किया चाँद यूँ रात भर,
दिल के टुकड़े बिखर गंगाजल हो गये।

प्रीत भर कर नयन यूँ न देखो सजन,
बंध टूटेंगे गर जो विकल हो गये।

पाँव महावर रचे रुनझुन घुँघरू बजे,
याद के खंडहर फिर महल हो गये।

आलिंगन में भींचा फिर होठों से सींचा,
यूं ख्यालों ख्यालों हम सफल हो गये।

ग्यारह

इक शाम ऐसे भी गुजारी जाये।
पढ़ के ग़ज़लें उनकी आरती उतारी जाये।

पिघला के हुस्न को शराब में,
थोड़ी माहौल को भी पिलायी जाये।

करेंगी रश्क मुश्कतर परियां,
गर्म साँसो से तीलियां जलायी जाये।

सो रहा समंदर संगमरमर में,
फूल होठों से वीचियाँ जगायी जाये।

होगी पूरी हुस्न की अभ्यर्चना,
एक होकर हर दूरियाँ मिटायी जाये।

बारह

निगाहों से पी लूँ, चले जाइयेगा।
मै थोड़ा सा जी लूँ, चले जाइयेगा।

तुमसे अभी कहाँ बातें हुई हैं,
मैं कह तो मन की लूँ, चले जाइयेगा।

अश्कों का सैलाब रुकता नहीं अब
जो बाँध कश्ती लूँ, चले जाइयेगा।

फिर जाने कहाँ कब मुलाकात होगी,
जरा रोक अभी लूँ, चले जाइयेगा।

जाना ही है तो जाओ अब लेकिन,
जब नाम कभी लूँ,चले आइयेगा।

तेरह

होंठ तुम्हारे पतले से।
किसी ग़ज़ल के मतले से।

गीतों की लहरें छलकी,
छमछम पायल बजने से।

कविताओं से अतल डुबोते,
नयन तुम्हारे गहरे से।

पुष्ट गद्य सा ज्वार थमा है,
यौवन के बल कसने से।

नवल सृजन आनंद मिला,
क्षण क्षण तुझमें रमने से।

चौदह

रात अंधेरों ने पुचकार कर कहा।
सो जा तू क्यूं रात भर जगा।

पढ़कर पुराने खत फिर आज यूं लगा,
फिर बरस के बादल मुझपर गुजर गया।

पुरकशिश थी आवाज मै डूबता गया,
लहरों का दिल निचोड़ता इक भंवर गया।

सुकून की तलाश में मैं निकल गया,
मुज़रा, मन्दिर, मैकदा होकर घर गया।

मुझ पर उनकी दोस्ती का ये असर हुआ,
खुद की परछाई के नीयत से डर गया।

पंद्रह

जीए जाते हैं रोज किसी बहाने से।
ज़िंदगी कहते हैं लोग इसे जमाने से।

रोज रात नींद से पहले,
उतार रखता हूं चेहरे सिरहाने से।

हरे हैं जख्म अब भी तुम्हारे यादों के,
चली जाएंगी सोचा तुम्हारे जाने से।

मिला था अपना सा किसी चौराहे पर,
गुमशुदा है वही सख्स क्यूं फ़साने से।

वह अज़ीज़ भी जुदा होगा तुझसे,
'आलोक'खुश हैं बहुत जिसे पाने से।

सोलह

इस ज़िंदगी का क्या करूं?
मरूं? जिऊं? या जी लूं?

बेवफा यादों में आया है,
सहूं? बहूं? या पी लूं?

दिल गमगीं, रंगीं है मौसम,
रो लूं? सो लूं? या बोलूं?

राज़ नासूर सा चुभता है,
छिपूं? छिपा लूं या खोलूं?

ज़िंदगी से अदावत है तो,
लूं बदला? या कि बदल लूं?

वापसी का वादा किया है,
ले लूं आज या कि कल लूं?

ग़म चढ़ गयी है बहुत,
ग़म लूं, रम लूं या ग़ज़ल लूं।

सत्रह

बहुत दिनों से कुछ, कहा नहीं है।
ऐसा नहीं कि आँसू, बहा नहीं है।

खूबसूरत आज भी वो कम नहीं,
बस ये है कि अपना, रहा नहीं है।

दर्द में पहले सी लज्जत न बची,
होठों पे मेरे हंसी, बेवजहा नहीं है।

चलो मान लिया खतावार था मै,
कर दें इन्कार, वो तनहा नहीं है।

इस कदर बादल घिरे है 'आलोक'
सुबह होगी भी, ये सुबहा नहीं है।

अठारह

आज मौसम कुछ सर्द है।
शायद किसी का दर्द है।

तन्हाइयां बाँटता ही नहीं,
आदमी बड़ा खुदगर्ज है।

शर्मसार गिरा है नजरों से,
कहता था 'क्या हर्ज़ है'?

मौत ने हमे ठुकरा दिया,
जीते हैं कि जीना फर्ज है।

'आलोक' बेचारगी पे रोया,
शहर में वही एक मर्द है।

उन्नीस

जिन्दगी रेहन पडी है, लाचार सी।
राह तकती हो मां, ज्यूं बीमार सी।

सूर्खियों की स्याही बदलती हुई,
खुशियां लद गयीं, गये अखबार सी।

फूल, खूश्बू-ओ-रंग, ज़मींदोज अब,
खिलती है जिन्दगी, सिर्फ खार सी।

बैठो माज़ी का तबसिरा ही करे,
खामोशी काहिल बहुत, इतवार सी।

आलोक, ख्वाब सारे रूठे है यूं,
नींद बांदी को पड़ी हो, फटकार सी।

बीस

प्रेम कहाँ है, मिला ही नहीं।
इसका मुझे पर, गिला ही नहीं।

गुल तो बहुत से लगाये थें गुलचीं,
खिज्र का था आलम, खिला ही नहीं।

फिर गलियों से हो के जाना है मुझको,
फटा जो सियन था, सिला ही नहीं।

किसका पता ले के फिरते हो भाई,
इस नाम का अब, जिला ही नहीं।

मसलों का हल निकलना नामुमकिन,
बातों का यहाँ पर, सिलसिला ही नहीं।

इक्कीस

यार, विजय! क्या करते हो?
अक्षर-अक्षर बिखरा करते हो।

तन्हाई संग संग बैठ बस,
गम के घूंट पिया करते हो।

रोज बिक सकने की खातिर,
फिर संजा संवरा करते हो।

हां, किरदार को ही पर,
जख्म बहुत गहरा करते हो।

अश्कों को यूं उम्र कैद कर,
मुस्काहट का पहरा करते हो।

जहर सारे गटक गटक कर,
कैसे बेशक जिया करते हो?

बाइस

ये क्या कि जिन्दगी पार हुई जाती है।
बेरौनक, बेजार, बेकार हुई जाती है।

कभी तो आती थी सबा ए मुश्क तर,
खार खार अब गुलदार हुई जाती है।

दिन चुक गये हमारे भी लड़कपन के,
मां जो हर रोज बीमार हुई जाती है।

उमंगों का टोटा है दिल की बस्ती में,
और दुनिया है कि त्योहार हुई जाती है।

आबरू को अपना जिस्म ओढ़ लेता हूं,
जिन्दगी बेवा की सलवार हुई जाती है।

तेइस

वो मेरे सब्र का इम्तहान लेती है।
जिन्दगी है, किराया ए मकान लेती है।

सब सहती है, उफ नहीं करती,
सुखन एक दिन कलमबंद बयान लेती है।

परिंदा हूँ चला ही जाऊंगा लेकिन,
देखिए बहार कब आने का नाम लेती है?

कभी अपने गम आम नहीं करती,
दिल मादा है क्या? सब्र से काम लेती है।

अन्धेरी ग़जलों मे गुम इक शख्सियत,
बड़े यकीन से 'आलोक' उन्वान लेती है।

चौबीस

सपना ही था टूट गया।
भीड में हाथ छूट गया।

कोई मेरा चैन ओ सकूं,
मेरा वजूद लूट गया।

फिर आंखों में अश्क लिए,
जज्बात का ताबूत गया।

मेरी सच्चाई, मेरा समर्पण,
प्रेम का सारा सबूत गया।

वो सारी कस्में, वो वादे,
वो नींव थी मजबूत, गया।

पच्चीस

बहुत सी बातें कहाँ जाहिर होती हैं।
जज्ब करने में जिगर माहिर होती हैं।

शिकन बोल देती हैं सब दिल की,
खामोशी में हर्फ आखिर होती है।

फना हो जाते है फूल शाम होते होते,
चुभन कांटों की फिर-फिर होती है।

अदालते जिन्दगी में वफा चाहे न पहुचें,
बेवफाई हमेशा हाजिर होती है।

मुझे न कभी प्यार की सौगात मिली,
इनायत ये किसके खातिर होती है?

छब्बीस

नहीं, अब शिकायत नहीं करता।
पी लेता हूँ जहर,अब नहीं मरता।

कशिश थी अदाओं में वरना,
मुंह फेर लेता, रुख नहीं करता।

भर गयी होगी टंकी ऊपर तक,
यूं तेरे टेरेस तक तो नहीं बहता।

लिखे थें कसीदे तुझे रिझाने को,
सुनता तो महफ़िल में नहीं कहता।

'आलोक' मुझ पर जिम्मेदारी थी,
वरना मै इतनी कभी नहीं सहता।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम	- विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'
जन्मतिथि	- 8 मई 1964, इलाहाबाद
पिता	- स्व.श्री बद्री प्रसाद अग्रहरि 'सुमन'
माता	- स्व.श्रीमती पार्वती देवी अग्रहरि
शिक्षा	- एम.ए. (अंग्रेजी साहित्य), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, एम.एड. (हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय), पी.जी.सी.टी.ई.(सी.आई.ई.एफ.एल. हैदराबाद) पी.जी.डी.इ.एम. (आर.टी.ओ.यू. इलाहाबाद)
निवास स्थान	- 19 गोकुलग्राम आवास विकास कालोनी, बीबी खेड़ा, पारा लखनऊ - 226011
फोन नं.	- 7084255388, 9415884649
मेल आई.डी.	-vkagrahari2014@gmail.com
कार्यक्षेत्र	- केन्द्रीय विद्यालय संगठन में 1988 से अंग्रेजी शिक्षण
प्रकाशित/सम्मान	- कविता, गज़ल, गीत, आलेख आदि का आकाशवाणी से प्रसारण एवं विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-88102-98-8

मूल्य 55/-